कोरोना

कोरोना के दैनिक मामलों में उतार-चढ़ाव जारी, 24 घंटों में आए 27,071 नए मामले (Hindustan: 20201214)


कोरोना को लेकर दुनिया बाहर-बाहर कर रही है। वहीं भारत भी इससे लगातार जुड़ा रहा है। हालांकि देश में कोरोना के दैनिक मामलों में उतार-चढ़ाव जारी है। बीते 24 घंटों की बात करें तो कोविड-19 के 27,071 नए मामले के साथ, भारत के कुल मामले 98,84,100 हो गए हैं। साथ ही 336 नई मौतें के साथ मरने वालों का आंकड़ा 1,43,355 हो गया है। फिलहाल, कुल संक्रमित मामले 3,52,586 पर हैं। वहीं पिछले 24 घंटों में 30,695 नए डिस्चार्ज के साथ कुल 93,88,159 लोग ठीक हो चुके हैं।

कोरोना वायरस से दुनियाभर में अब तक 15.95 लाख लोगों की मौत हो चुकी है और 7.1 करोड़ से ज्यादा लोग अब तक इसकी चपेट में आ चुके हैं। अमेरिका की जॉन हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी के विज्ञान एवं इंजीनियरिंग केंद्र (सीएसएसई) की ओर से जारी आंकड़ों के मुताबिक, विश्व के 192 देशों में कोरोना वायरस से अब तक 7.1 करोड़ से ज्यादा लोग संक्रमित हुए हैं जबकि 15 लाख 94 हजार 775 मरीज अपनी जान गंवा चुके हैं।

कोरोना से सर्वाधिक प्रभावित अमेरिका में अब तक 1.58 करोड़ से अधिक लोग संक्रमित हुए हैं, जबकि 2.95 लाख से ज्यादा मरीजों की मौत हुई है। संक्रमण के मामलों के हिसाब से दूसरे सबसे बड़े देश भारत में संक्रमितों की संख्या की चर्चा 98.26 लाख हो गई है। इस दौरान 33,494 मरीजों के स्वस्थ होने
India’s daily Covid-19 count drops to 27,071, active cases go down further (Hindustan Times: 20201214)


A major milestone was achieved on Sunday when the country reported more daily recoveries than the daily new cases during the past 24 hours. The recovery rate stands at 94.93 per cent.

A healthcare worker preserves swab samples collected to test for Covid-19 infection, at Udyog Nagar in New Delhi on Sunday.

The coronavirus disease (Covid-19) tally reached 9,884,100 on Monday after 27,071 new cases of the infection was recorded in the last 24 hours, according to Union health ministry.

The number of active cases went down to 3,52,586 and 93,88,159 patients have been cured or discharged.

The fatality count reached 1,43,355 after 336 new deaths were reported due to the infection, as per the health ministry’s figures.

India infection tally crossed 9.8 million-mark on Sunday. But a major milestone was achieved when the country reported more daily recoveries than the daily new cases during the past 24 hours. The recovery rate stands at 94.93 per cent.

The active caseload has fallen to 3.62 per cent of the total cases, the health ministry said on Sunday.

It also said that India reported one of the lowest cases per million population in the world (158) in the last seven days on Sunday; much lower than many other countries of the Western Hemisphere.

Meanwhile, the total number of people who have lost their lives to the viral infection in Delhi crossed the 10,000 mark - becoming only the fourth state in the country to do so.
As of Sunday, the infection has killed a total of 10,014 people from the 607,454 people infected so far, according to government health bulletin.

The grim landmark, however, comes at the time when the outbreak in the city appears to be under control for the third time. Sunday’s new deaths were the lowest single-day fatalities reported in Delhi in 45 days, or since October 29, when 27 new deaths were reported.

The Indian Council of Medical Research (ICMR), meanwhile, said on Monday that a total of 15,45,66,990 samples have been tested for Covid-19 up to December 13. Of these, 8,55,157 samples were tested on Sunday.

वैज्ञानिकों ने खोज निकाला जवाब, आखिर क्यों कोरोना वायरस कुछ लोगों पर होता है जानलेवा साबित (Hindustan: 20201214)


शरीर में मौजूद पांच तरह के जीन के कारण कोरोना संक्रमण ज्यादा घातक होता है। ब्रिटेन के एडिनबर्ग विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने मरीजों के डीएनए का अध्ययन करके इस बात का पता लगाया है।

इस अध्ययन से इस बात की गुन्थी आश्चर्य रूप से सुलझ गई है कि आखिर क्यों कोरोना वायरस कुछ लोगों पर जानलेवा साबित होता है जबकि कई मरीज आसानी से ठीक हो जाते हैं।

एडिनबर्ग विश्वविद्यालय के शैक्षणिक सलाहकार व शोधकर्ता वे बाल्ती का कहना है कि शरीर में पांच जीन की मौजूदगी के कारण कुछ लोगों पर कोरोना का असर जानलेवा होता है, जबकि कई लोगों पर संक्रमण का असर नहीं होता।

ये जीन टीवाईके2, सीसीआर2, ओएएस1, आईएफएनएआर2 और डीपीपी9 हैं। यह अध्ययन करने के लिए शोधकर्ताओं ने ब्रिटेन के 208 आईसीयू यूनिट में भर्ती रहे 2700 मरीजों के डीएनए डाटा का विश्लेषण किया। साथ ही, इन मरीजों के डाटा की तुलना ब्रिटेन के अन्य एक लाख लोगों से की।
वैज्ञानिकों ने पाया कि पांच तरह के पैदों के कारण शरीर में दो प्रकार के असर होते हैं। पहला असर एंटवायरल इम्युनिटी और दूसरा असर लंग इंफ्लेमेशन से जुड़ा है।

शोधकर्ताओं ने जिस 2700 मरीजों पर अध्ययन किया, उनमें से 22 फीसदी मरीजों की मौत हो गई। इन मरीजों में सांस न ले पाने की समस्या थी, जिसके कारण उन्हें वेटिलेटर दिया गया था।

शोध के मायने: प्रतिफँटित नेघर पत्रिका में प्रकाशित हुए इस अध्ययन के जरिए वैज्ञानिक पहले से उपलब्ध दवाओं का नैदानिक परीक्षण करके एंटवायरल इम्युनिटी और लंग इंफ्लेमेशन को लक्षित करते हुए कोरोना संक्रमण की दवा बना सकते हैं।

**Coronavirus in donated eye tissue, researchers raise concern over transmission during transplantation (The Indian Express: 20201214)**


It has been found the novel coronavirus can infiltrate corneal tissue (the outer layer of the eye) that could be used for transplantation, raising concerns that the disease could be transmitted to a healthy recipient.

Covid-19 can reach and affect the eyes, two new studies have found. One study, in the US, has reported the discovery of the novel coronavirus in conjunctival swabs and tears of infected patients, raising concerns that the infection could be transmitted during eye transplantation. In the UK, researchers have reported sore eyes as a symptom of Covid-19. The two studies are independent of each other.

**Virus in eye tissue**

The US study, published in ‘The Ocular Surface’, analysed the prevalence of the virus in human postmortem ocular tissues. It found that the virus can infiltrate corneal tissue (the outer layer of the eye) that could be used for transplantation, raising concerns that the disease could be transmitted to a healthy recipient. In fact, the research looked at 132 ocular tissues from 33 donors that were intended for surgery in several US states. Among the donors, 13% were positive for Covid-19, determined later.
Covid-19 patients hold much of the virus in the upper respiratory tract. The researchers suggest that there is a strong possibility that the virus could contaminate the outer layers of the eye via respiratory droplets after coughing, sneezing or hand-to-eye contact.

About the possibility of transmission via transplantation, lead researcher Shahzad Mian said in a statement: “There’s no evidence to suggest Covid-19 can be transmitted from a corneal transplant, but our data assures us that a screening process to determine who’s positive for the virus and who isn’t is important to make sure we do everything in case there is a potential risk of transmission.

The findings show that before transplantation, it is important to carry out postmortem nasopharyngeal swab testing for detecting Covid-19.

Sore eyes as symptom

The UK study, published in the journal ‘BMJ Open Ophthalmology’, was conducted by researchers at Anglia Ruskin University. It found that sore eyes can be a symptom of Covid-19.

The researchers asked Covid-19 patients to complete a questionnaire about their symptoms, and how those compared to before they tested positive. Sore eyes was found to be significantly more common when the participants had Covid-19 — 16% reported it as a Covid-19 symptom, while just 5% reported having had the condition beforehand.

Of the 83 respondents, 81% reported eye issues within two weeks of other Covid-19 symptoms. Of those, 80% reported their eye problems lasted less than two weeks.

Lead author Shahina Pardhan said in a statement released by Anglia Ruskin University: “While it is important that ocular symptoms are included in the list of possible Covid-19 symptoms, we argue that sore eyes should replace ‘conjunctivitis’ as it is important to differentiate from symptoms of other types of infections… This study is important because it helps us understand more about how Covid-19 can infect the conjunctiva and how this then allows the virus to spread through the body.”
आज युवा हो या कोई बुजुर्ग हर तीसरा व्यक्ति हाई ब्लड प्रेशर के रोग से परेशान है। अगर आप भी इस रोग को कंट्रोल रखने के लिए दवाइयां खाने-खानकर लगा आ चुके हैं तो अपनी डाइट पर थोड़ा ध्यान जरूर दे। आइए जानते हैं ऐसी 5 चीजें के बारे में जो बढ़ा सकती हैं हाई ब्लड प्रेशर के मरीजों की मुश्किलें, जिनका सेवन उच्च रक्तचाप के मरीजों को भूलकर भी नहीं करना चाहिए।

नमक-
हाई ब्लड प्रेशर के मरीजों के लिए नमक का अधिक सेवन उच्च रक्तचाप और हदय रोग का कारण बन सकता है। यह रक्त में द्रव संतुलन को प्रभावित कर सकता है, जिससे हाई ब्लड प्रेशर की समस्या हो सकती है। यही वजह है कि हाई ब्लड प्रेशर के रोगियों को भोजन में नमक कम खाने की सलाह दी जाती है।

अचार-
भोजन को संरक्षित करने के लिए नमक का आवश्यकता होती है। नमक भोजन को जलदी सड़ने से बचाकर उसे लंबे समय तक खाने योग्य बना रखता है। सब्जियां, कैशंग और तरल पदाथे को संरक्षित के लिए नमक बहुद जरूरी होता है। लेकिन नमक वाली संरक्षित चीजें का सेवन हाई ब्लड प्रेशर के रोगियों के लिए परेशानी का सबब बन सकता है।

कॉफी-
हाई ब्लड प्रेशर के रोगियों को चाय या कॉफी का सेवन कम करना चाहिए। इन पेय पदाथों में कैफीन की मात्रा अधिक होती है, जो ब्लड प्रेशर के रोगियों की समस्या को और बढ़ा सकती है।

डिब्बाबंद सूप-
डिब्बाबंद सूप में सोडियम की उच्च मात्रा होती है। डिब्बाबंद और पैक किए गए स्टॉक में सोडियम की मात्रा अधिक होने से वो आपके रक्तचाप को बढ़ा सकते हैं। टमाटर सूप का एक कैन सोडियम का सोत हो सकता है।

मसालेदार खाना -

यूं तो अधिक सेवन मसाले वाले भोजन का सेवन करना अधिक असुलग्य है। देखें अधिक सेवन के मरीजों को तो खासतौर पर ऐसा भोजन करने से चिकित्सा आवश्यकता होगी। मसालेदार भोजन का सेवन उनकी परेशानी और ब्लडप्रेशर को ओर बढ़ा सकता है।

कोरोना वायरस का टीका

सबको टीका लगाने की चुनौती (Hindustan: 20201214)

नए कोरोना वायरस (सार्स-कोव-2) से बचाव का टीका कितना कारगर होगा और टीकाकरण अभियान किस रूप में आगे बढ़ेगा, इसको लेकर क्षम की स्थिति बनी दुःख है। इसकी एक बड़ी वजह यह है कि अधिकारिक सूचना, शिक्षाविदों और ‘अपूर्व’ रास्तों से हम तक पहुंच रही सूचनाओं में अंतर है। टीकाकरण अभियान के सफल संचालन की समय-सीमा को लेकर भी अलग-अलग खबर आ रही है।

प्रेस विज्ञापितों बताती हैं कि वैक्सीन अच्छी काम कर रही हैं। 2 दिसंबर को ब्रिटेन में दवाओं व स्वास्थ्य सेवा उत्पादों की निगरानी करने वाली राष्ट्रीय एजेंसी ‘एमएचआरए’ ने तीसरे चरण के परीक्षण के आधार पर फाइजर और बायोएनटेक की एमआरएनए-आधारित कोरोना वैक्सीन को अपने यहां अस्थाई तौर पर इस्तेमाल की मंजूरी दी। इस तरह, वह दुनिया की पहली नियमानुसार संस्था बन गई, जिसने ऐसी मंजूरी दी है। बीते 7 दिसंबर को ब्रिटिश सरकार ने टीकाकरण की शुरुआत भी कर दी। उधर, एस्ट्राजेनेका-आंक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी द्वारा तैयार हो रहे टीके ने भी, जो कि चिम्पांजी से लिए
गए वायरस के आधार पर बना है, परीक्षण में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित कम से कम 50 फीसदी प्रभावशाली होने संबंधी बंचमार्क्स से बेहतर नतीजा दिखाया है। इससे यह धारणा मजबूत हुई है कि सार्स-कोव-2 के स्पाइडर प्रोटीन के आधार पर तैयार टीके कार्यर होंगे।

भारत में फाइजर ने ‘न्यू इंडिया एंड विज्ञानिकल ट्रायल रूल्स, 2019’ के प्रावधानों के तहत टीके के तुरंत इस्तेमाल को लेकर केंद्रीय औषधि मानक नियंत्रण संगठन (सीडीएसडीओ) के पास अर्जी दी है। अगर फाइजर को स्वीकृति मिल भी जाती है, तब भी इसकी संभावना कम है कि यह वैक्सीन व्यापक रूप से इस्तेमाल की जा सकेगी। ऐसा इसलिए, क्योंकि इस वैक्सीन को माइनस 70 डिग्री सेल्सियस पर रखने की जरूरत होगी। आधुनिक टीके के भंडारण के लिए जरूरी माइनस 20 डिग्री की सीमित क्षमता को देखते हुए संभावना इस बात की ज्यादा है कि भारत के राष्ट्रीय टीकाकरण अभियान में, और अन्य निम्न व मध्यम आय वाले देशों में भी, उन टीकों के विकल्प को चुना जाएगा, जिनको व्यापक रूप से उपलब्ध सुविधाओं के सहारे ही स्टोर पैदा किया जा सके। इसका साफ मतलब है जो अभ्यास दो से आठ डिग्री सेल्सियस पर जिस टीके को रखा जा सकेगा, उसी का इस्तेमाल होगा।

यदि टीकाकरण कार्यक्रमों में उपयोग न किए जाने वाले टीकों को भी अपने यहां सीमित या पूर्ण मंजूरी परीक्षण के लिए किया जाए तो, यह मंजूरी टीका खरीदने में समर्थ लोगों और उन नागरिकों के बीच एक विभेद पैदा कर देगी, जो टीकाकरण के लिए सरकार के भरोसे रहेगे। हालांकि, कई टीकों को लेकर अपने यहां यही स्थिति है। लिहाजा तस्वीर साफ करने के लिए जिनी क्षेत्र की भूमिका व टीके की पहुंच को लेकर प्रारंभी चर्चा लाजीम है।

उत्पादन-क्षमता को लेकर भी आंकी अलग-अलग हैं, लेकिन बीते मार्च और जून माह के बीच ‘द कॉलेशन फॉर एपिडेमिक प्रीपरेशन इनोवेशन एंड पार्टनर्स’ द्वारा इंटरनेशनल निर्माताओं पर किए गए सर्व बताते हैं कि 2021 के अंत तक वैश्विक तौर पर दो से चार अरब टीके तैयार हो सकते हैं। मगर, हाल के एक अंकेंडे से उम्मीद ज्यादा बढ़ती है। दरअसल, ‘इंडियन ग्लोबल हेल्थ इनोवेशन सेंटर’ ने कहा है कि भारत को लेकर अरब से अधिक टीके खरीदने को लेकर चाारों तेज हैं और अकेले भारत ने 16 अरब टीके को लेकर प्रतिबद्धता दिखाई है।

यदि मान ले कि यह आंकड़ा सही है और 2021 के अंत तक अपने यहां 1.6 अरब टीके पहुंच जाएंगे, तब भी जरूरतमंदों को इन टीकों को पहुंचाने की अपनी चुनौतियां हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन टीकाकरण के लिए जरूरी आपूर्ति-शृंखला के प्रबंधन के एंड ‘राइट्स’ की वकालत करता है- राइट प्रोटक्ट (सही उत्पाद), राइट क्वालिटी (सही मात्रा), राइट कंडिशन (सही स्थिति), राइट प्लेस (सही जगह), राइट टाइम (सही वक्त) और राइट कॉर्ट (सही कीमत), यानी सही वैक्सीन, उसकी सही मात्रा, उसका
परिवहन, भंडारण, वितरण, टीकाकरण आदि सभी में संतुलन की दरकार होती है। लिहाजा, रेफ्रिजरेटेड गाड़ियों की उपलब्धता, परिवहन की सुरक्षा, टीके की चोरी और नकली उत्पादों की मिलावट रोकने जैसे कई मोर्चों पर भी हमें तैयारी रखनी होगी।

भंडारण और आपूर्ति की जटिलता के साथ-साथ हमें वैक्सीनेटर्स (टीका लगाने वाले) को प्रशिक्षित करने, टीकाकरण के लिए अतिरिक्त आपूर्ति करने, टीकाकरण सत्रों की तैयारी करने और कर्मचारी नियोजन के लिए भी एक अलग सिस्टम बनाना होगा। और इन सबसे पहले हमें उन लोगों की पहचान के तरीके विकसित करने पड़ेगे और हर उस शख्स की पहचान करनी होगी, जिन्हें इस वैक्सीन का जरूरत है।

अपने यहां गर्भवती महिलाओं के लिए टेक्स्टस/ डिप्थ्रिया टीकाकरण को छोड़ दें, तो व्यस्क लोगों के लिए कोई टीकाकरण कार्यक्रम नहीं चल रहा। इसलिए, जिन प्राथमिकता सूचियों की घोषणा की गई है, उनमें सभी प्राथमिकता समूहों की पहचान करना और उन तक पहुंचना खास कठिन होगा। तमाम राज्यों को सरकारी और निजी स्वास्थ्यकर्मियों की सूची बनाने के लिए कहा गया है, जो संभव है और यह बनाई भी जा रही है। मगर, स्वास्थ्यकर्मियों और अन्य सेवाओं में लगे लोगों के अन्तर्गत, बुजुर्गों और सह-रुग्णता (दूसरी बीमारियों से पीड़ित) वाले मरीजों की पहचान करना मुश्किल बना काम है।

इसमें झूठे दस्तावेजों के आधार पर टीके लेने और अन्य घोटालों की आशंका होगी।

प्रवासियों और शरणार्थियों की भी चिंता करनी होगी, क्योंकि निवास प्रमाण-पत्र के अभाव में वे टीकाकरण से बाहर रह सकते हैं। इतना ही नहीं, टीके की तयशुदा दो-खुराक सब तक पहुंचाना भी एक चुनौती होगी, खासकर कमजोर आबादी के लिए, क्योंकि शिशु टीकाकरण में हम इस चुनौती से जूझ रहे हैं। व्यस्क टीकाकरण में ऐसा होने की आशंका होती है।

बेशक सभी समस्याओं का पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता, लेकिन हमारे पास टीकाकरण को भजित करने और उसके संचालन का अनुभव है, खासतौर से पिछले एक दशक में हमने ऐसी सफलता पाई है। लिहाजा, जहाँ सरकार इस अनुभव का इस्तेमाल टीका, उसकी आपूर्ति और हमें परिवहन की योजनाएं बनाने में कर रही है, वहीं योजनाओं को साझा करना और विभिन्न ऐजेंसियों के साथ तालमेल भी जरूरी है, क्योंकि इस वृहद काम में हम सभी के हित जुड़े हुए हैं।
वैक्सीन लगने के बाद भी मास्क पहनने की आदत न छोड़ें।

जिलों में कोरोना वैक्सीन पहुँचाने के लिए 18 और गाड़ियां खरीदी गई हैं। हम कोरोना वैक्सीन को सुरक्षित ढंग से रखने और उसे आम लोगों को लगाने के लिए जो भी जरूरी संसाधन हैं उसे जुटा चुके हैं। 15 दिसंबर तक तैयारियां पूरी हो जाएंगी।

लखनऊ, दो राकेश दुबे। कोरोना काल की दुखद यादों के बीच वैक्सीन के आने का मुख्य समाचार किसी वर्दान से कम नहीं। वैज्ञानिकों के अथक प्रयास के बाद अब सरकारी मशीनरी की बारी है। कई माह तक जिंदगी को ठहरा देने वाली इस महामारी का ठिठूना ही हमारी जीत नहीं। देश में एक भी केस रहने तक यह लड़ाई रुकने वाली नहीं। इसी संघ के साथ पूरे देश में अब कोरोना से लड़ने के बीच वैक्सीन को लेकर तैयारियां अभी तक हो चुकी हैं। सबसे अहम है सुदर इलाकों में इसकी कोल्ड चेन बनाए रखना और इसके व्यापक प्रबंध किए जा रहे हैं। जाहिर है कि देश की सबसे उत्तर में जयादा आबादी वाले राज्य उत्तर प्रदेश पर सबकी निगहें होंगी।

प्रदेश में मार्च के बाद गर्मी बढ़ती है, ऐसे में कोल्ड चेन बनाए रखने की चुनौतियाँ से मुकाबला करने की पूरी तैयारी कर ली गई है। अभी प्रदेश में 80 हजार लीटर वैक्सीन रखने की व्यवस्था है। अब इसे बढ़ाकर 2.03 लाख लीटर कर दिया गया है। दो से आठ डिग्री सेल्स्यस के तापमान पर वैक्सीन रखी जाएंगी। में यह कह सकता हूँ कि जो तैयारियां हैं, उससे कोल्ड चेन टूटने की तनिक भी गुंजायें नहीं है। केंद्र सरकार की ओर से काफी मदद मिली है। आठ वॉक इन कूलर व चाय वाले इन फ्रीजर मंगाए गए हैं। 1,610 आइएलआर, 1,430 डीप फ्रीजर, 26,800 वैक्सीन कैरियर और 1950 कोल्ड बॉक्स भी मिले हैं। वैक्सीन के बंदरगाह के लिए 22 जिलों में 500 वर्ग फीट के कमरे बनवाए गए हैं। 27 जिलों में करोड़ों की बड़े पैमाने पर मरम्मत की गई है। वहीं 26 जिलों में जक्कर के अनुसार छिटपुट मरम्मत कार्य हुए हैं।

हमारा पूरा फोकस सुरक्षित ढंग से टीकाकरण पर है। स्वास्थ्यकर्मियों को टीका लगाने के लिए एक हजार टीकाकरण केंद्र, फ्रॉटलाइन वर्कर्स को टीका लगाने के लिए दो हजार टीकाकरण केंद्र और फिर 50 वर्ष से अधिक आयु के लोगों को टीका लगाने के लिए करीब तीन हजार केंद्र बनाए जा रहे हैं। इनके बाद
ऐसे लोग जो कि अन्य गंभीर बीमारियों से ग्रस्त हैं, उनको कोरोना का टीका लगाया जाएगा। केंद्र सरकार ने ऑनलाइन ट्रेनिंग प्रोग्राम के माध्यम से प्रदेश में टीकाकरण के लिए मास्टर ट्रेनर तैयार कर दिए हैं। अगले हफ्ते से हम जिलों में ट्रेनिंग प्रोग्राम शुरू करेंगे। टीका लगाने के लिए एनएम के अलावा नरस, फार्मासिस्ट व इंटर्न आदि की भी मदद ली जाएगी। यदि लोगों से अनुरोध है कि जब तक कोरोना की वैक्सीन नहीं आ रही तब तक पूरी सर्वेरकता बरतें। वैक्सीन लगाने के बाद भी मास्क पहनने की आदत न छोड़ें।

भारत के सामने आने वाली है सबसे बड़ी चुनौती। सफल हुए तो बदल जाएगी दुनिया की सोच (Dainik Jagran: 20201214)


भारत के पास है दुनिया की धारणा बदलने का मौका
भारत में कोरोना की वैक्सीन को सभी के लिए उपलब्ध कराना वास्तव में एक बड़ी चुनौती का काम है। हालांकि यदि भारत इससे सफल रहा तो दुनिया की ये धारणा बदल जाएगी कि भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र की हालत सही नहीं है।

नई दिल्ली (जेएनएन)। कोविड-19 महामारी के संदर्भ में सबसे बड़ी चुनौती अब आने वाली है। भारत जैसे विशाल देश में हर व्यक्ति तक टीका पहुंचाना और उन्हें इसे लगाने के लिए तैयार करना सबसे बड़ी मुश्किल साबित हो सकती है। देश के 70 करोड़ लोगों को 12 महीनों में सुरक्षित करना बड़ी चुनौती है। अगर हम इसमें सफल रहते हैं तो दुनिया की इस धारणा को तोड़ने में मदद मिलेगी कि भारत का स्वास्थ्य क्षेत्र में प्रदर्शन खराब है। देश की छवि बेहतर होगी, जिसका सकारात्मक असर निवेश पर होगा।
हर्ड इम्युनिटी की दरकार
प्रत्येक व्यक्ति को वैक्सीन उपलब्ध कराने की बात करना स्वाभाविक है, लेकिन सभी 1.3 अरब लोगों
को वैक्सीन उपलब्ध कराने की आवश्यकता नहीं है। महामारी को रोकने के लिए 70 फीसद लोगों को
सुरक्षित कर हड़ इम्युनिटी को हासिल किया जा सकता है। यह करीब 90 करोड़ है, लेकिन गर्भवती
महिलाओं और 10 साल से कम उम्र के बच्चों को अलग रखा जाना चाहिए। इसका कारण है कि किसी
भी वैक्सीन का अभी तक इन समूहों में परीक्षण नहीं किया गया है।

भारी-भरकम खुराक

ऑपरेशनल टारगेट 70 करोड़ से कम है और साल भर में इसे हासिल करने के लिए दो खुराक प्रति
व्यक्ति के हिसाब से साल भर में 1.4 अरब खुराक की जरूरत होगी। साल भर में 1.4 अरब खुराक
हासिल करना चुनौती है, हालांकि अन्य विकासशील देशों की तुलना में हमारी स्थिति बेहतर है। इसका
कारण है हमारी बड़ी वैक्सीन उत्पादन क्षमता। सीरम इंटरनेशनल ऑफ इंडिया दुनिया की सबसे बड़ी
वैक्सीन निर्माता है। यह ऑक्सफोर्ड स्ट्राजेनेका वैक्सीन का उत्पादन कर रही है और नोवावैक्स
वैक्सीन का उत्पादन भी करती है। प्रति वर्ष 1.2 अरब खुराक की क्षमता का विस्तार कर रहा है और
इसका आधा हिस्सा भारत के लिए उपलब्ध हो सकता है। अन्य भारतीय वैक्सीन निर्माता हैं: जाइडस
कैडलान, भारत बायोटेक्ल, डॉ. रेडीज लेबोरेटर्ज और बायोलॉजिकल ई।

चयन की चुनौती

टीकाकरण कार्यक्रम में वैक्सीन का चुनाव साधारण मामला नहीं है। वैक्सीन बहुत अलग तकनीकों पर
आधारित हैं- मैसेजर आरएनए, एडेनोवाइरस और निक्रिय वायरस के प्रयोग वाला परिपरागत
द्रष्टिकोण। प्रत्येक वैक्सीन सह-रूपान्तरण की उपस्थिति के आधार पर विभिन्न आयु समूह पर प्रभाव,
साइड इफेक्ट्स और एक दूसरे से अभावशीलता में भिन्न होगी। एक अंतरराष्ट्रीय रिपोर्ट के अनुसार
भारत उन तीन देशों में शुमार हैं, जिन्हें एक अरब से ज्यादा खुराक हासिल करना पक्का कर चुका है।

वैक्सीन निर्माताओं के लिए ये मौका मुनाफे वाला होगा।

दवा निर्माता कंपनियों के लिए कितने मुनाफे का सौदा होगी कोरोना वैक्सीन, जानिए कैसे
वित्त पोषण बढ़ा मसला

टीकाकरण कार्यक्रम का वित्तीय पोषण विवादास्पद मुद्दा है। यदि सरकार खर्च वहन करती है तो
राज्यों की खराब आर्थिक स्थिति देखते हुए केंद्र सरकार राज्यों के लिए विशेष अनुदान पर विचार कर

सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि केंद्र को 2021-22 के बजट में टीकाकरण कार्यक्रम के लिए अतिरिक्त 35,000 करोड़ रुपये देने होंगे।

डाटा न होने के कारण मुश्किल

अलग-अलग प्राथमिकता वाले समूहों में आने वाले व्यक्तियों की वास्तविक पहचान राज्य सरकारों को करनी होगी। डाटाबेस न होने से सह रुपणता वाले लोगों को पहचानना मुश्किल काम होगा। राज्यों को स्वयं घोषणा करने वाले व्यक्तियों पर निर्भर रहना होगा।

पोलियो के काठन है यह टीकाकरण

पोलियो की खुराक मुंह मेंगेने के विपरीत कोरोना में इंट्रामस्कुलर इंजेक्शन की आवश्यकता होती है। इंजेक्शन आमतौर पर नसी दवारा दिए जाते हैं, लेकिन उनकी संख्या कम है। अच्छी बात यह है कि एक शिक्षित व्यक्ति को इंजेक्शन देने के लिए अपेक्षाकृत जल्दी प्रशिक्षित किया जा सकता है। राज्यों को मार्च के मध्य तक उपलब्ध समय का उपयोग करना चाहिए, जब कर्मियों को प्रशिक्षित करने के लिए पहले टीकाकरण के शुरू होने की उम्मीद है। निजी क्षेत्र की दवा कंपनियों और अस्पतालों को प्रशिक्षण में मदद करने के लिए इस्तेमाल किया जासकता है।

क्रियान्वयन में लघुलापन जस्ती नजीजे कैप्टन की भूमिका

पूर्व में केंद्र द्वारा प्रयोजित योजनाओं के साथ बड़ी समस्या यह है कि वे केंद्र द्वारा निर्धारित कठोर दिशा निर्देशों से पीड़ित रहें। अनुभव बताता है कि राज्य सरकारों को क्रियान्वयन में अधिकतम लघुलापन दिया जाना चाहिए।

निजी क्षेत्र की भूमिका

निशुल्क वैक्सीन सरकारी अस्पतालों के जरिये वितरित करने का विचार उन देशों के लिए ठीक है, जहां बेहतर राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा है। भारत में स्थिति बहुत अलग है। शहरी क्षेत्रों में लोग निजी चिकित्सकों पर भरोसा करते हैं। फार्मूलेशन और टेस्टिंग लेब जैसे निजी संस्थाओं को टीकाकरण के लिए राज्य सरकार के अधिकृत एजेंटों के रूप में नामांकित किया जा सकता है। सरकारी अस्पतालों में जाने के इंतज़म लोग पूरी तरह से फ्री में प्राप्त कर सकते हैं। इससे सार्वजनिक क्षेत्र के अस्पतालों में भी डी से बचने में मदद मिलेगी जो आसानी से सुपर-स्प्रेडर घटनाओं में बदल सकते हैं। निजी अस्पतालों और क्लीनिकों को भी बाजार से अनुमोदित वैक्सीन खरीदने और आम जनता कोशुल्क के साथ लगाने की अनुमति दी जानी चाहिए। निजी कंपनियों स्वयं के खर्च पर कर्मचारियों का टीकाकरण करने के लिए
तैयार हो सकती हैं। कम से कम पहले दो वर्षों के लिए निजी क्षेत्र को आर्थिक ध्वनि वैक्सीन पर मूल्य नियंत्रण से बचना महत्वपूर्ण होगा।

इंसुलिन

इंसुलिन क्या होता है, शरीर के अंदर कैसे बनता है और डायबिटीज से बचने के लिए क्यों जरूरी है?

जानें हर सवाल का जवाब (Navbharat Times: 20201214)


insulin-3

इंसुलिन एक तरह का होर्मोन होता है, जो शरीर के अंदर प्राकृतिक रूप से बनता है और रक्त में मिलकर ग्ल्यूकोज के स्तर को नियंत्रित करने का काम करता है। लेकिन हर में से ज्यादातर लोग इंसुलिन के बारे में डायबिटीज जैसे खतरनाक रोग के कारण जानते हैं। क्योंकि यदि शरीर के अंदर इंसुलिन का उत्पादन ठीक से ना हो या यह अपना काम ठीक से ना कर पाए तो हम शुगर के पेशांट बन सकते हैं।

शरीर में इतने काम करता है इंसुलिन

-रक्त में शुगर की मात्रा नियंत्रित करने के अतिरिक्त इंसुलिन शरीर के अंदर फैट को सहेजने का काम करता है। ताकि जरूरत पड़ने पर शरीर इस वसा का उपयोग कर सके।

-रक्त में ग्ल्यूकोज का स्तर नियंत्रित करने के साथ ही इंसुलिन शरीर की हर कोशिका तक ऊर्जा पहुंचाने का काम भी करता है। यानी सीमित मात्रा में हर कोशिका तक ग्ल्यूकोज पहुंचाता है।

शरीर में इतने काम करता है इंसुलिन

कोलोरेक्टल कैंसर और आंत के ऊतकों में परिवर्तन के लिए जिम्मेदार नहीं है IBS
हमारे शरीर को ऐंट्रिक्स रखने के लिए इंसुलिन का उत्पादन और इसका अब्जॉविशन दोनों ही बहुत जरूरी हैं। यदि इस प्रक्रिया में कोई भी दिक्कत होती है तो व्यक्ति थका हुआ और असहाय अनुभव करता है।

इंसुलिन मेटाबॉलिजम की प्रक्रिया को सही रखने में मदद करता है। इंसुलिन का उत्पादन अग्नाश्य में होता है और कार्य क्षमता के आधार पर यह कई तरह का होता है। इसके बारे में आप बात करेंगे।

मैथी दाना करता है डायबिटीज और ब्लड शुगर को नियंत्रित, यहां जाने इसके काम करने का तरीका इंसुलिन कैसे बनता है?

इंसुलिन का उत्पादन हमारे अग्नाश्य यानी पैनक्रियाज में होता है। भोजन करने के बाद जब रक्त में शुगर और ग्लुकोज की मात्रा बढ़ जाता है, उस समय उस बढ़ी हुई शुगर को नियंत्रित करने के लिए इंसुलिन का स्त्रोत होता है।

PCOD की समस्या के बारे में वो सबकुछ, जो आपको पता होना चाहिए

शुगर पेशंट को क्यों पड़ती है इंसुलिन की जरूरत?

जिन लोगों को टाइप-1 डायबिटीज होती है, उनके पैनक्रियाज में इंसुलिन बनानेवाली बीटा कोशिकाएं नष्ट होने के कारण इंसुलिन नहीं बन पाता है।

insulin-1

डायबिटीज में इंसुलिन की जरूरत

जिन लोगों को टाइप-2 डायबिटीज होती है, उनके शरीर में इंसुलिन बनता तो है लेकिन यह इंसुलिन प्रभावी नहीं होता है। इसलिए ग्लुकोज की मात्रा को नियंत्रित करने के लिए इंसुलिन लेने की आवश्यकता होती है।

सिर्फ मोटापे से नहीं बल्कि इन 4 सामान्य कारणों से भी बार-बार फूल जाता है पेट

डायबिटीज और इंसुलिन इंजेक्शन

जैसा कि यहां बताया गया है कि इंसुलिन एक हॉर्मोन है और इसका उत्पादन अग्नाश्य में होता है। लेकिन डायबिटीज के मरीज शुगर को नियंत्रित करने के लिए जिस इंसुलिन का उपयोग करते हैं,
उसकी कार्यक्षमता शरीर में बननेवाले इंसुलिन से अलग होती है। यह भिन्नता इंसुलिन के प्रभाव के आधार पर होती है।

-शुगर के मरीज आमतौर पर इंजेक्शन की मदद से इंसुलिन लेते हैं। एक इंसुलिन वह होता है, जो इंजेक्शन लगाने के मात्र 15 मिनट में असर दिखाना शुरू कर देता है और करीब चार घंटे तक शरीर में इंसुलिन की कमी को पूरा करता है।

तुरंत संक्रमित होने पर मात्र 30 सेकंड्स में मारा जा सकता है कोरोना वायरस

sinus-2

बॉडी में इंसुलिन की जरूरत

-दूसरा इंसुलिन वह होता है, जो इंजेक्शन लगाने के करीब 30 मिनट बाद असर दिखाना शुरू करता है और यह शरीर में करीब 6 घंटे तक इंसुलिन की कमी को पूरा करता है।

-एक इंसुलिन वह होता है जो इंजेक्शन लगाने के 2 घंटे बाद असर दिखाना शुरू करता है और इसका असर शरीर के अंदर 12 घंटे तक रहता है।

-चौथा इंसुलिन वह होता है, जो इंजेक्शन लगाने के एक घंटे बाद असर दिखाना शुरू करता है और यह शरीर के अंदर 24 घंटे तक इंसुलिन की कमी को पूरा करता है।

-यदि आप शुगर के मरीज हैं तो आपको किस तरह के इंसुलिन की जरूरत होगी, इस बारे में आपको अपने डॉक्टर से बात करनी चाहिए। क्योंकि आपकी रिपोर्ट के आधार पर वही इस बारे में सही जानकारी दे सकते हैं।

आप पर जल्दी अटैक करेगा कोरोना, अगर आपके शरीर में है इस विट्टमिन की कमी
Aerosols act like a "launch vehicle" for bacteria

Some bacteria can travel from one continent to another 'hidden' in atmospheric dust, according to a new study which says these microbes may not only affect human and animal health but also impact climate and ecosystems.

The research, published in the journal Atmospheric Research, deciphered the mystery of the transport of microorganisms across continents via 'giant' atmospheric particles called iberulites that could be inhaled by humans.

According to scientists, including those from the University of Granada (UGR) in Spain, these aerosols act like a "launch vehicle" for bacteria and may pose a risk of disease transmission across continents.

They explained that iberulites are giant atmospheric bioaerosols made of multiple minerals, measuring on average one hundred microns approximately.

While these bioaerosols were discovered in 2008, the scientists said the mechanism by which bacteria are involved in the formation of atmospheric iberulites remained unknown.

In the current study, the researchers analysed atmospheric dust deposits in the city of Granada in Spain.

They found that the composition of these deposits was heterogeneous, comprising predominantly clay, quartz, and carbonate minerals and, iron oxides to a lesser extent.

In addition to these minerals, the scientists said bacteria, silicon-rich algae called diatoms, and other single-celled organisms made up the biological component.

They said the aerosols also contained bronchoscopes which are microscopic granules secreted by insects such as grasshoppers.

According to the study, the dust originated from the Sahara Desert in north-northeast Africa and local soils with evidence of atmospheric interactions between these components and clouds.
Analysing the iberulites, the researchers found that they formed as a result of chemical and physical interactions between dust grains, the microorganisms from Saharan soils which initiate the aerosol formation, and water-vapour molecules from clouds.

The droplet of water agglutinates dust particles of different sizes in its interior together with bacteria in suspension, the study noted.

"Bacteria can survive in iberulites because these provide a nutritious medium, a microhabitat rich in nutrients, and they protect the bacteria from ultraviolet radiation," said Alberto Molinero Garcia, a co-author of the study from UGR.

"This is demonstrated by the bacterial polymeric exudates that, rather like mucilaginous mucus, act as a 'glue' between the mineral particles, preventing their disaggregation and increasing their resistance to the fragility in the turbulent phenomena of the atmosphere," Garcia added.

According to the researchers, the iberulites aid microorganisms to travel great inter-continental distances on atmospheric currents such as the Saharan Air Layer (SAL).

They believe these aerosols may exist throughout the world, primarily in those regions where dust is carried in from desert regions. PTI

Obesity among kids

Govt survey finds drastic rise in obesity among kids under 5 years in 20 states (The Tribune: 20201214)


Men and women were counted as obese whose body mass index was found to be over or equal to 25.0 kg/m2 while children's obesity was counted in terms of weight-for-height

The latest National Family Health Survey (NFHS) has found a drastic rise in obesity among children under five years of age in 20 of the 22 states where the study was conducted, with experts attributing it to lack of physical activity and unhealthy food habits.

According to the NHFS-5, several states and Union Territories, including Maharashtra, Gujarat, Mizoram, Tripura, Lakshadweep, Jammu and Kashmir, and Ladakh, have registered
several folds increase in the percentage of obesity among children below five years of age in comparison to NFHS-4 conducted between 2015 and 2016.

Only Goa, Dadra and Nagar Haveli, and Daman and Diu registered a drop in the number of overweight children under five years of age, the data showed.

About 13.4 per cent of children under the age of five were found to be obese in Ladakh which was highest among the 22 states and Union Territories surveyed, followed by Lakshadweep at 10.5 per cent, Mizoram 10 per cent, Jammu and Kashmir, and Sikkim 9.6 per cent each.

Not just children, rise in obesity has even been recorded in adults in the latest survey in comparison to NFHS-4.

According to the survey data, 16 states and Union Territories registered a rise in obesity among women while 19 states and UTs recorded an increase in obesity among men.

Kerala and the Andaman and Nicobar Islands recorded the highest percentage of obesity among women at 38 per cent. Also, the Andaman and Nicobar Islands and Lakshadweep recorded the highest percentage of obesity among women at over 40 per cent.

Men and women were counted as obese whose body mass index was found to be over or equal to 25.0 kg/m2 while children's obesity was counted in terms of weight-for-height.

Healthcare experts have attributed the rise in obesity to unhealthy food choices and lack of physical activities among children and even adults.

Sheila Vir, a public health nutrition expert and founder director of Public Health Nutrition and Development Centre, said there is also lack of awareness on what are good food habits.

Also, high-fat and high-sugar foods are easily available and so there is higher consumption of it, she said.

"We have a double burden of undernutrition, malnutrition and overnutrition occurring together. So, I think what to feed a child is what we are going wrong in," Vir said.

In view of the COVID-19 pandemic, she also raised concern over the rise in obesity.

"There might be an increase in obesity among children in view of COVID-19 pandemic as after closure of schools, there was lack of physical activity among children and even in adults in some cases," she said.

Dr. Khan Amir Maroof, Professor at Department of Community Medicine, University College of Medical Sciences and GTB Hospital termed the rise in obesity a "very disturbing sign".

"Obesity is a manifestation of what is rapidly changing in our environment. Of late, we see trends which increase the risk of developing obesity. Environmental factors, such as availability and consumption of junk foods, poor complementary feeding, lack of outdoor activity, and increased screen time on may be the reason for this trend," he said.
"For children, we need to flag screen time as it has multi-dimensional effects on children, obesity, being one of them. The focus has been on breastfeeding, but now it's time that complementary feeding is also focused upon," Dr Maroof suggested.

About the repercussions of obesity among children, he said non-communicable diseases can develop among obese children earlier than others.

"There are higher chances for them being bullied in schools, neglected or shamed by peers, which lead to mental health problems among them," he said.

Among adults, he said more consumption of ready-to-eat foods, increase in screen time with the 24-hour access to web content, and lack of outdoor spaces seem to be hitting adults with obesity.

He suggested that children, with more stress on complementary feeding practices in the community, and reducing screen time, can be the immediate actions.

"Counselling of breastfeeding mothers of children around 4 months of age should focus on counselling on complementary feeding. We find that all mothers know 'what' to give to the child but 'how much', 'when' and in 'what consistency' need to be explained with respect to complementary feeding. Intervention strategies to reduce screen time are needed," he said.

The NFHS results of 17 states and five Union Territories have been released now as phase-one. The phase-two results covering other states will be released next year, the health ministry had said.

The present NFHS was conducted on 6.1 lakh sample households, involving household-level interviews to collect information on population, health, family planning and nutrition related indicators. — PTI
Diet/ Nutrition

Study finds no evidence that vegan diet benefits specific blood type (Medical News Today: 20201214)


Proponents of the blood type diet claim that people with type A blood benefit most from a vegan diet. However, a new study found no link between diet and blood type. The researchers instead suggest that plant-based diets are beneficial for people of all blood types.

Hinterhaus Productions/Getty Images

Staying healthy generally involves exercising regularly and following a nutritious diet. While the Centers for Disease Control and Prevention (CDC) recommend a balanced diet of fruits, vegetables, lean meat, and poultry, the blood type diet suggests that nutritional needs depend mainly on a person’s blood type.

Debunking the blood type diet

The blood type diet tailors an individual’s eating patterns to specific food items to maximize the health benefits. However, a 2013 review in The American Journal of Clinical Nutrition found that these claims lacked scientific evidence.

When looking at cardiometabolic factors, or a person’s chance of stroke, diabetes, and heart disease, the findings of a 2014 study did not support tailoring diets to blood types.

Although the results did show that people on the Type A diet — which involves eating high amounts of grains, fruits, and vegetables — had a lower body mass index (BMI) and waist circumference, as well as reduced blood pressure, cholesterol, and fat, these improvements in risk factors were not dependent on blood type.

Despite insufficient evidence to support blood type diets, some people believe that catering to blood type can lower disease risk.

Purpose of the study

The appeal for blood type diets may actually come from the health benefits associated with a plant-based diet. Researchers have linked these diets to a lower BMI and a reduced risk of obesity, diabetes, and heart disease.

A recent study in JAMA Network Open found that low fat vegan diets helped lower insulin resistance and boost metabolism, which aided weight management. Based on these results,
researchers affiliated with the Physicians Committee for Responsible Medicine reanalyzed the study’s data to determine whether blood type played a role.

The current study was a subset of the JAMA Network Open study, and it focused exclusively on the participants belonging to the intervention group in the 16-week trial.

The findings appear in the Journal of the Academy of Nutrition and Dietetics.

Study methods

The trial recruited a total of 244 adult men and women from Washington, D.C., with a BMI between 28 and 40. None of the participants had a history of diabetes, drug abuse, pregnancy, or lactation, and none were currently on a vegan diet.

The researchers assigned half of the participants to follow a strict, low fat vegan diet, while the other half did not make any changes to their diet. The participants self-reported what they ate during the 16-week trial.

The vegan group also attended weekly classes on dietary information, which health professionals led. The researchers advised all of the participants to continue their regular exercise habits.

The measurement of cardiometabolic risk factors took place at the start and end of the trial, following a 10-to-12-hour overnight water-only fast.

After this, the researchers replicated the method but included blood typing. The secondary analysis involved a total of 68 participants.

Study outcomes

At the start of the trial, body weight and low-density lipoprotein (LDL) cholesterol levels were higher in people with blood type A than in those with other blood types. In contrast, body weight and LDL cholesterol levels were lower in people with blood type O than in those with other blood types.

There were no significant differences between blood type and the changes that resulted from the vegan diet.

After 16 weeks on the low fat vegan diet, there were no statistically significant differences in the average change in body weight between the blood type groups. People with blood type A lost an average of 5.7 kilograms (kg) compared with 7.0 kg for people with other blood types. The average weight loss for people with blood type O and those with other blood types was 7.1 kg and 6.2 kg, respectively.

The researchers also found no significant evidence of a difference in the decrease in average cholesterol between the groups either. They reported a decrease of 17.2 milligrams per deciliter (mg/dl) in the type A group versus 18.3 mg/dl in the other participants, and a decrease of 17.4 mg/dl for the type O group versus 18.4 mg/dl.
“Although the intervention diet was similar to that recommended by D’Adamo [a proponent of the blood type diet] for individuals with blood type A and specifically recommended against for those with type O, there were no associations between these blood types and the outcomes of the dietary intervention,” concluded the authors.

Study strengths and limitations

There were multiple strengths to the study, starting with ruling out possible confounders that could influence the results.

For instance, to exclude physical activity as a factor, participants maintained their regular exercise routine during the 16-week trial. Also, all participants started the trial simultaneously, which ruled out seasonal changes in diet.

According to the researchers, 16 weeks was a suitable time for participants to acclimate and adhere to the study. There was also a low drop-out rate.

The participants did not have access to ready-prepared meals but could prepare food at home or opt for take-out. This method made the findings more applicable to real-life conditions.

However, there were major limitations regarding representation.

Not as many participants with blood types AB and B were involved in the trial. As a result, the team had to combine blood groups. Also, participants in the study were health-conscious and may have been more motivated to adhere to a low fat vegan diet. Consequently, the participants may not be representative of the general population.

Takeaway: A lack of strong evidence

Overall, the researchers say that their data add to the current body of work consistently finding a lack of strong evidence for the blood type diet.

“These studies, like the present one, suggest that dietary changes, especially increased intake of fruits, vegetables, and grains, are beneficial not only to individuals with blood type A but also to all individuals regardless of blood type, and that there is no apparent value of limiting these healthful diet changes to a specific set of individuals based on ABO blood group.”

Start a custom weight loss program

Noom helps you adopt healthy habits so you can lose weight and keep it off. Your program is customized to your goals and fitness needs. Just take a quick assessment and get started today.
Researchers have found an increase in infant health inequality between educated, economically advantaged mothers and economically disadvantaged mothers without a high school degree. This suggests a reversal in the previous trend that indicated that the infant health inequity gap was narrowing.

Being born at full-term and having a healthy birth weight can be vital components in an infant’s immediate and future health outcomes.

As Dr. Hitesh Deshmukh notes in an article in the journal Infectious Diseases in Children, “Babies who are born prematurely are at risk of cardiovascular disease and increased high blood pressure that can persist into adulthood.”

Additional research in the B.E. Journal of Economic Analysis & Policy indicates that a low birth weight or preterm birth can lead to cognitive delays, behavioral issues, and a lower likelihood of attaining higher education and gainful employment.

In a new study, researchers Emily Rauscher, an associate professor of sociology, and David Enrique Rangel, an assistant professor of education — both of whom are from Brown University in Providence, RI — investigated trends in infant health inequality from 1989 to 2010 in the United States.

The team found data indicating a reversal of a pre-2010 infant health trend that showed that the health gap between infants born to married, highly educated white mothers and those born to unmarried Black mothers without a high school degree had steadily narrowed.

They recently published their findings in the journal Social Science & Medicine – Population Health.

The study authors noticed a possible shift in trends while analyzing data on how a mother’s education level impacts infant health, along with previous information on the impact of maternal race.

To investigate further, they examined 22 million U.S. births using administrative birth certificate data from 1989 to 2018. They identified gaps in infant health categorized by the mother’s race, marital status, and educational level.
The researchers also gathered data on infant health gaps between economically advantaged mothers and those who were the most financially disadvantaged.

After evaluating the information, the researchers found that after 2010, gaps in health between Black and white infants remained relatively stable. However, the health inequality gap increased between infants born to married and unmarried mothers and between infants born to college-educated mothers and those who did not have a high school degree.

The numbers reveal disparities

The research showed that among married mothers, the rate of preterm births declined after 2010 by 1.6%, after steadily increasing by 0.6% per decade before that year. However, premature births in unmarried mothers had decreased by 0.7% per decade before 2010, then increased by 1.1% per decade after that year.

Among mothers without a high school degree, after 2010, low birth weight rates increased by 1.4% per decade, while very low birth weight rates increased by 0.2% in that same time frame. This was following a relatively stable rate in the previous 20 years.

In mothers with a college degree, the rate of infants born with a very low birth weight decreased by 0.1%, and the preterm birth rate decreased by 1.7% per decade after 2010. This is after slight increases in low birth weights and preterm births in the previous 2 decades.

The most noticeable difference in infant health status after 2010 was between infants born to white, married, and college-educated mothers and those born to Black, unmarried mothers without a high school degree.

“The fact that we found the steepest increase in inequality when we isolated for education level suggests to us that moms without a high school degree have become increasingly marginalized in American society.”

— Emily Rauscher

The researchers explain that one limitation of their research was their inability to gather maternal income or financial status information. They also indicate the need to examine infant mortality rates for similar disparities.

What could have caused this reversal?

The investigators say that possible reasons for the adverse shift in infant health trends over the past 10 years may be economic, demographic, or political in nature.

Some other factors they note are limited access to affordable, nutritious food and exposure to harmful chemicals that may exist where economically disadvantaged mothers may reside.

Future research should investigate how the population of unmarried Black mothers without high school degrees has changed over time. “That could be because the population of Americans without a high school degree is becoming smaller and smaller — so as education
levels rise, those with the lowest levels of education face more of a disadvantage in every respect,” explains Rauscher.

As for solutions, she and Rangel suggest making positive policy changes that ensure that all expectant mothers receive appropriate healthcare in the first 6 weeks of pregnancy, providing academic support to those at risk, and implementing a universal basic income.

Diabetes

Managing diabetes after incarceration: A difficult journey (Medical News Today: 20201214)


Dr. Rodlescia Sneed is an assistant professor in the Division of Public Health at Michigan State University. Her work examines the health and well-being of economically vulnerable older adults, including those with a history of incarceration. In this Opinion piece, she explains why managing diabetes can be difficult for someone who has been incarcerated.

For the average adult, a diabetes diagnosis is life-changing. Managing diabetes involves a daily routine that shifts toward remembering to take medication, check blood sugar, and monitor carbohydrate intake.

Frequent trips to multiple doctors’ offices become the norm, as regular foot checks, dental appointments, eye exams, and primary care visits are crucial for avoiding the complications of poorly managed disease.

Health inequities affect all of us differently. Visit our dedicated hub for an in-depth look at social disparities in health and what we can do to correct them.

These complications can include gum disease, cardiovascular problems, nerve damage, kidney failure, blindness, and even amputation. Individuals who receive an early diagnosis and manage the disease well can expect to live as long as those without diabetes, but research has linked poor disease management to reduced life expectancy of up to 8 years.

For someone reentering society after being in prison, managing diabetes can be quite difficult. In the United States, more than 2 million people are incarcerated in jails and prisons on a given day, and nearly 5% of them have diabetes.
These individuals typically do not serve life sentences; rather, 95% eventually return to community settings that may not readily embrace them or their medical needs.

For example, taking medication every day requires having a safe place to live and store medications. This is not a given for formerly incarcerated people, many of whom often struggle simply to find a place to live.

In the U.S., individuals who have been inmates in jails or prisons just once are seven times more likely to experience homelessness than the general population. Meanwhile, those who have been incarcerated two or more times are 13 times more likely than other people to lack housing.

Individuals with a criminal history face numerous collateral consequences of conviction — legal restrictions that disqualify them from accessing a range of resources and opportunities upon release.

Unemployment is a major concern for people with a criminal history. According to the Prison Policy Initiative, individuals with a criminal history are nearly five times more likely to be unemployed than the general population.

Many employment sectors bar those with a criminal history, limiting their ability to earn the money necessary to afford adequate housing. Those who turn to low-income housing programs often face being denied access, as many public housing programs have strict eligibility criteria that exclude individuals with a criminal history.

This is true even for older adults. Many low-income senior housing assistance programs deny access to individuals with recent criminal convictions and permanently ban those with a history of criminal sexual conduct, even if the crime occurred decades earlier.

Proper management of a chronic health condition such as diabetes is a low priority for survival when a person is struggling simply to find a safe place to sleep at night.

Additionally, food insecurity complicates diabetes management for formerly incarcerated adults. Access to adequate quantities of nutritious food is crucial for effective diabetes management.

A diabetes-friendly diet restricts carbohydrate intake, as carbohydrate-rich foods often raise blood glucose levels higher and faster than foods rich in protein and fiber.

Formerly incarcerated individuals, however, often report great difficulty in accessing healthful foods. Estimates of food insecurity among formerly incarcerated individuals returning to community settings are as high as 91%.

Among the many collateral consequences of criminal conviction in the U.S. are limitations on the receipt of federal supplemental nutrition assistance program benefits (i.e., SNAP or food stamps) for individuals convicted of certain criminal offenses.
While most states have eliminated lifetime bans on food assistance, more than 30 states still place some restrictions on food assistance for individuals with felony drug convictions.

Faced with an inability to afford nutritious foods, food-insecure individuals often turn to cheap, high calorie foods, which can lead to weight gain, poor blood glucose control, and an increased risk of diabetes-related health complications.

Likewise, poor healthcare access and utilization negatively affect diabetes management among formerly incarcerated adults. Access to affordable health insurance is crucial for disease management, as the self-management of diabetes requires visits to primary care doctors and specialists; the ongoing use of medication, such as insulin and oral medications; and daily use of testing supplies, including glucose test strips and glucose meters.

Uninsured adults with diabetes engage in fewer preventive healthcare activities than their insured counterparts, including less daily blood glucose monitoring, reduced participation in diabetes education classes, and fewer foot and eye exams.

Historically, a lack of health insurance has been a significant barrier to healthcare access for formerly incarcerated individuals. Given the difficulties of finding employment after incarceration, employer-based health insurance is typically not an option.

Traditionally, Medicaid coverage has been limited to pregnant women, parents with a low income, and those under the age of 65 with disabilities. Notably, this does not include men (who make up about 93% of the U.S. state and federal prison population), unless they care for minor children or have disabilities.

At the end of their sentence, individuals with diabetes may have trouble obtaining health insurance, depending on where they live. Since the Affordable Care Act of 2010, 39 U.S. states (including the District of Columbia) have expanded Medicaid to include all adults with a low income, regardless of gender, disability, or parenting status.

However, 12 states have not expanded their Medicaid programs. Thus, adults with diabetes and a low income living in non-expansion states are likely to be uninsured. Notably, the states without Medicaid expansion are located primarily in the Southeast region of the U.S., where rates of both diabetes and incarceration are the highest in the country.

Given the barriers that formerly incarcerated individuals face, ensuring adequate diabetes management in this population will require a host of system-level changes. Providing widespread access to health insurance for individuals with diabetes and a low income is crucial.

Without it, formerly incarcerated adults with diabetes will forego necessary medical care simply because they cannot afford it. This lack of treatment will only increase their risk of adverse disease-related complications.

The benefits of Medicaid expansion have been well-documented — if all remaining states fully implemented Medicaid expansion, nearly 4 million people would gain health insurance,
decreasing the number of uninsured adults by 28%. The remaining states must be encouraged to expand their Medicaid programs to provide greater access to healthcare coverage in this population.

Additionally, there must be increased policy advocacy surrounding the health-related collateral consequences of criminal conviction. As they reenter community settings, individuals with a criminal history face countless barriers that adversely affect their ability to manage diabetes or any other chronic health condition effectively.

Most criminal justice advocacy work examines the impact of collateral consequences on economic security. However, policies that restrict employment, housing, and access to healthful food for those with criminal records also ultimately endanger population health.

Chronic disease management and population health must be a part of the conversation when advocating for criminal justice reform.

As the U.S. population ages, and chronic health conditions become more prominent, failure to integrate these issues into larger criminal justice policy discussions will just add to the difficulties that formerly incarcerated adults must deal with as they attempt to reintegrate into society.